वैदिक गणित : उद्‌भव, विकास व प्रासंगिकता

मीनू गुप्ता*
उषा दुबे**

आज हम अपनी गौरवशाली संस्कृति को विस्मृत करने तथा पाश्चात्य संस्कृति का अन्धा अनुकरण करने के कारण एक ऐसी द्वन्द्व की स्थिति में पहुँच चुके हैं, जहाँ किसी भी प्रकार का सही निर्णय लेने में स्वयं को असमर्थ पा रहे हैं। हम किसी भी तथ्य तथा प्राचीन ज्ञान को प्रामाणिक तभी मानते है जब उस पर पाश्चात्य देशों की मोहर लग जाती है। सांस्कृतिक दृष्टि से अति समृद्ध होते हुए भी हम स्वयं को पिछड़ा हुआ अनुभव करते हैं, अतिविकसित होते हुए भी विश्व के मानचित्र पर हम विकासशील देशों की श्रेणी में आते हैं। अपनी प्राचीन संस्कृति को अपनाने में हमें लज्जा का अनुभव होता है, जबकि पाश्चात्य देश हमारी संस्कृति को उत्कृष्ट मानते हैं और उसे अपनाने के लिए प्रयासरत हैं।

प्राचीन विरासत पर दृष्टि डालने पर हमें समृद्ध संस्कृति का ज्ञान होता है। रामायण तथा महाभारत के युग में प्रयुक्त अस्त्र–शस्त्र और विमान भारतीय तकनीकी और प्रौद्योगिकी की पराकाष्ठा के द्योतक हैं। महाभारत युद्ध की जीवन्त घटनाओं को धृतराष्ट्र को दिखाने के लिए संजय ने जिस दिव्य दृष्टि का परिचय दिया था उसकी तुलना आज के दूरदर्शन से की जा सकती है। चिकित्साशास्त्र में भी भारतीय मनीषियों का अप्रतिम योगदान है। चरक संहिता में आयुर्वेद का विस्तृत वर्णन मिलता है जिसके द्वारा असाध्य रोगों का समूल नाश हो जाता है, परन्तु आयुर्वेद अपना विशिष्ट स्थान बनाने में असमर्थ रहा है। वर्तमान समय में बाबा रामदेव और आयुर्वेदाचार्य बालकृष्ण जी इसे शिखर पर पहुँचाने का प्रयास कर रहें है। सुश्रुत संहिता में शल्य–क्रिया के विविध यन्त्रों और शल्य–क्रिया करने की विविध विधियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्लास्टिक सर्जरी जिसे विदेशियों की देन कहा जाता है, का वर्णन भी सुश्रुत संहिता में मिलता है।

स्थापत्य कला के प्रमाण के रूप में हमारे समक्ष भारत के मंदिर, स्मारक और महल उपस्थित हो जाते हैं। नाप तौल का विस्तृत वर्णन वैशेषिक दर्शन से प्राप्त होता है। आर्यभट्ट ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी सूर्य के चारो ओर चक्कर लगा रही हैं। इसकी पुष्टि 1000 (एक हजार) वर्ष पश्चात कॉपरनिकस ने की। देश और काल की वैज्ञानिक अवधारणा को सर्वप्रथम भरतीय दार्शनिकों ने अनुभव किया जिसकी व्याख्या आइन्स्टीन ने की। शून्य से सृष्टि हुई या अस्तित्वविहीन से अस्तित्व का उदय हुआ, के सिद्धान्त को गुरू ब्रहस्पति ने अपने सूत्र "असतो सत् अजायत्" के माध्यम से हमारे समक्ष रखा।

उपर्युक्त सभी के प्रमाण हमें वेदों में मिलते हैं। वेद ज्ञान विज्ञान के अक्षुण्ण भण्डार हैं। ये ज्ञान के सच्चे अन्वेषक को वैज्ञानिक ही नहीं वरन् गणितीय परिशुद्ध पद्धति पर सभी

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर शिक्षाशास्त्र विभाग, एम0डी0पी0जी0 कॉलेज, प्रतापगढ़।
** असिस्टेण्ट प्रोफेसर शिक्षाशास्त्र विभाग एम.डी.पी.जी. कॉलेज, प्रतापगढ़।

आवश्यक अनुदेश और पूर्ण विवरण सहित मार्गदर्शन देते हैं। हम जिस ब्रम्हाण्ड में रहते हैं उसकी संरचना गणित मूलक तथा गणितीय मापों और सम्बन्धों में व्यक्त नियमों का अनुसरण करती है।

वैदिक स्थापत्यवेद जो कि अथर्ववेद का उपवेद है, में इन्जीनियरी के अन्तर्गत वास्तुशिल्प तथा संरचना सम्बन्धी सारे मानवीय उद्यम और चाक्षुष कलाएं आती हैं। जगदगुरू श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज ने स्वाभाविक रूप से गणित या गणना विज्ञान को इसी विभाग में माना है। वैदिक गणित जो 16 सूत्रों पर आधारित है, अथर्ववेद के परिशिष्ट में वर्णित है। इसको संकलित करके हमारे समक्ष प्रस्तुत करने का श्रेय स्वामी जी को जाता है। स्वामी जी अपने इन सूत्रों द्वारा गणित की सभी शाखाओं जैसे अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, ज्यामिती, त्रिकोणमिति, ज्यामितीय तथा वैश्लेषिक शांकव गणित, ज्योतिष विज्ञान, अवकलन तथा समाकलन संहित कलन इत्यादि को सरलीकृत करना चाहतें थे किन्तु वे इसे लिखित रूप में नहीं छोड़ पाए।

वैदिक गणित ज्ञान चक्षुओं द्वारा साक्षात्कार किए गए गणित के मूलभूत सत्यों का साकार रूप है। इस अद्वितीय प्रणाली से भारत का गौरवशाली अतीत जुड़ा हुआ है तथा गणित के सूत्र में वैदिक कालीन भारतीय योगदान आज विश्व मानचित्र पर अत्याधुनिक है। वैदिक गणित को संकीर्णता से जोड़ने का प्रयास तर्कसंगत नहीं है। वास्तव में वैदिक गणित मूलरूप से विधि सम्मत है और प्रचलित गणित की अपेक्षा श्रेष्ठ और सर्वमान्य है। आज केवल भारत में ही नहीं अपितु विश्व के अन्य देशों में भी इस पर शोध कार्य किये जा रहे हैं। अतः इसके विस्तृत अध्ययन के लिए हमें इसके इतिहास पर दृष्टि डालना अपेक्षित होगा। इसके इतिहास को हम निम्न कालों में बांट सकते हैं:–

- **आदि काल**
  - (क) वैदिक काल (1000 ई. पू. तक)
  - (ख) वेदांग ज्योतिषकाल / शुल्व काल (1000 ई. पू. से – 500 ई.पू. तक)
  - (ग) सूर्य प्रज्ञप्तिकाल (500 ई. पू. तक)
- **शैशव काल (500 ई. पू. से 500 ई. तक)**
- **मध्य काल / स्वर्ण युग (500 ई. से 1200 ई. तक)**
- **उत्तर काल (1200 ई. से 1800 ई. तक)**
- **वर्तमान काल (1800 ई. से अब तक)**
- **आदि कालः–**

वैदिक काल

वेदों में संख्याओं और दाशमिक प्रणाली का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के एकोनविंश काण्ड के सूक्त 22 और 23 में 1–20 तक की संख्याओं का उल्लेख है। ऋग्वेद की ही निम्न ऋचा में द्वादश (12) त्रीणि (03), त्रिशत (300) संख्याओं का प्रयोग हुआ है।

द्वादश प्रथमस्य क्रमेकं त्रीणि नभ्यामिकं उतच्चिकेत।
तस्मिन्तस्माकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिता षष्टिर्न चलाचलास।

वैदिक काल में गणित ज्योतिष के अन्तर्गत आता था और यह काफी विकसित था। इसका प्रमाण नारदमुनि द्वारा रचित नारद विष्णु पुराण के 'त्रिस्कन्धज्योतिष' में मिलता है। इस पुस्तक में संख्याएं एक दूसरे से दस गुना के रूप में वर्णित है अर्थात 10 का वर्ग, जोड़, घटाना, गुणा, भाग के अतिरिक्त भिन्न, वर्ग, वर्गमूल, घनमूल की संकल्पना ही नहीं अपितु इनका प्रयोग विस्तृत और सृजनात्मक ढंग से होना इसी काल में प्रारम्भ हो गया था।

दस के स्थानिक मान का तरीका भारत से अरब व वहाँ से पश्चिमी देशों तक पहुँचा। इसी कारण 1–9 तक की संख्याएँ अरब में हिन्दसा (Hindsa- हिन्दुस्तान से प्राप्त अर्थात हिन्दू अंक) कहलाई तथा पश्चिमी देशों में 0–9 हिन्दू-अरबी संख्याएँ कहलाती हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में ही भारतीय अंक अरब से मिश्र तथा यूरोप पहुँचे। अतः यूरोप वासी इन अंकों को अरब अंक कहते हैं। इसलिए भारतीय अंकों, अरबी अंकों और रोमन अंकों में अत्यधिक साम्यता दिखाई देती है।

यद्यपि शून्य (Zero) तथा अपरिमित (infinite) के प्रत्यय भी उस समय थे, किन्तु यूरोपवासी उनसे अनभिज्ञ थे उनका ज्ञान केवल जोड़ने व घटाने तक सीमित था। गुणा व भाग को वे उच्च कक्षाओं मे पढ़ाये जाने वाले विषय के रूप में जानते थे।

वेदों में ही बीजगणित की जड़े निहित हैं। भारतीय बीजगणितम् जब अरब पहुँची तो अल्जेब्रा (Algebra) कहलाई। अल्जेब्रा एक अरबी पुस्तक का नाम था जिसमें भारतीय बीजगणितम् के प्रत्यय वर्णित थे। यही ज्ञान वहाँ से यूरोप पहुँचा। इस प्रकार से भारतीय बीजगणितम् अल्जेब्रा (Algebra) के नाम से जानी जाने लगी। गणित के अन्य विभागों जैसे रेखागणित, त्रिकोणमिति आदि का भी महत्वपूर्ण विकास हो चुका था। इस काल में ही गणित के जो मूलभूत सिद्धान्त और विधियाँ विकसित हो गई थीं उन्हीं को काल और परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार विकसित करने का श्रेय जगद्गुरू शंकराचार्य भारतीय कृष्ण तीर्थ जी महाराज को जाता है।

वेदांग ज्योतिषकाल / शुल्व काल

इस काल में यज्ञ व हवन के लिए वेदी का अत्यधिक महत्व था। इसके ऊपर विभिन्न प्रकार के ज्यामित बनाए जाते थे जिनकी उचित माप के लिए रस्सी (शुल्व) का प्रयोग किया जाता था। इन्हीं से शुल्व सूत्रों का विकास हुआ जो ज्यामितीय गणित के आधार हैं। शुल्व सूत्रों में आज के रेखागणित में प्रयुक्त अधिकतर सिद्धान्त और प्रमेय विकसित रूप से प्रस्तुत किए गए हैं।

इस काल में बोधायन, अपस्तम्ब और कात्यायन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहाँ पर बोधायन शुल्व सूत्र के उस सूत्र का उल्लेख करना आवश्यक है जिसे हम आज

अज्ञानतावश पाइथागोरस प्रमेय के नाम से जानते हैं। बोधायन ने निम्न सूक्त में स्पष्ट किया है–

'दीर्घचतुरश्रस्याक्षण्या रज्जुः पार्श्वमानी।
त्रियड्.मानी च यत्प्रथकमूते कुरू तस्मेदुभयं करोति।'

अर्थात दीर्घचतुरश्र (आयत) की आक्षण्या रज्जु (कर्ण) पर बना क्षेत्र (वर्ग) पार्श्वमानी (आधार) पर तिर्यड्.कमानी (लम्ब) द्वारा बनाए गए क्षेत्र (वर्ग) के योग के बराबर होता है।

डॉ0 विभूतिभूषण दत्त ने शुल्व सूत्रों का वर्णन अपनी पुस्तक 'साइन्स ऑफ शुल्व' में विस्तृत रूप से किया हैं।

सूर्य प्रज्ञप्ति काल / जैन व बौध काल

गणितीय सिद्धान्तों और विधियों का विस्तारण तथा इसे प्रचलित भाषा और स्तर तक पहुंचाने का कार्य इस काल में किया गया।

दीर्घ वृत्त (दीर्घ आयत पर बना परिवृत्त या परिमंडल) का स्पष्ट उल्लेख इस काल में मिलता है किन्तु दीर्घवृत्त का अविष्कारक आज भी मिनमैक्स (350 इ पू0) को माना जाता है।

विभिन्न प्रकार की अन्य ज्यामितीय आकृतियों तथा नियमों का भी प्रतिपादन इस काल में किया गया जैसे वर्ग (Square), वृत्त (Circle), समान्तर चतुर्भुज (Parallelogram) इत्यादि।

जैन ग्रन्थों में लघुगणक (logarithm) के मूलभूत आधारों का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है किन्तु आज भी नैपियर (550–670 ई0) को इसका प्रवर्तक माना जाता है।

बौध साहित्यों में भी गणित को अत्यधिक महत्व दिया गया है तथा संख्याओं को संख्येय (countable), असंख्येय (Uncountable) तथा अनन्त (Infinity) में बाँटा गया है।

इस काल में उपलब्ध गणित के प्रमुख ग्रन्थ 'सूर्यप्रज्ञप्ति', 'चन्द्र प्रज्ञप्ति', 'भगवती सूत्र' तथा 'स्थानांग सूत्र' इत्यादि है।

- **शैशव कालः–**

'वक्षाली गणित' 'सूर्य सिद्धान्त' और गणितानयोग के कुछ पन्नों को छोड़कर इस काल की सभी पुस्तकें कालकवलित हो गई किन्तु इन पन्नों से और इनके पश्चात् आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त आदि के उपलब्ध साहित्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस काल में भी गणित का काफी विकास हुआ। सूर्य सिद्धान्त में त्रिकोणमिति का स्पष्ट उल्लेख मिलता है जिसका प्रयोग ग्रहों की स्थिति, गति और ग्रहण आदि के निर्धारण में किया जाता था।

'स्थानांग सूत्र' और 'भगवती सूत्र अनुयोगद्वार' इस युग के प्रमुख ग्रंथ हैं जिनमें दाशमिक पद्धति अंकगणित और बीजगणित का स्पष्ट उल्लेख है। क्रमचय तथा संचय (permutation and combination) का वर्णन भी मिलता है।

- **मध्यकाल / स्वर्णयुगः–**

मध्यकाल गणित का स्वर्णकाल है क्योंकि इसी काल में आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्काराचार्य, जैसे श्रेष्ठ गणितज्ञ हुए हैं जिन्होंने गणित की लगभग सभी शाखाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया। वेदों में सूत्र रूप में जो सिद्धान्त व विधियाँ थीं वे इसी काल में पूर्ण सम्भावनाओं के साथ हमारे समक्ष उपस्थित हुईं।

आर्यभट्ट ने अपनी पुस्तक 'आर्यभट्टीय के गणितपाद' के 33 श्लोकों में गणित के मूलभूत सिद्धान्तों को सारगर्भित किया। इनके प्रथम दो पादों में गणित तथा अन्तिम दो पादों में ज्योतिष सम्बन्धी विवरण हैं।

प्रथम पाद में बड़ी–बड़ी संख्याओं को लिखने के लिए वर्णमाला के अक्षरों द्वारा निरूपण करने की विधि बताई गई है तथा द्वितीय पाद में अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित के अनेक कठिन प्रश्नों को हल करने की विधि दर्शाई गई है। बीजगणित के साधारण व वर्गीय समीकरण (Simple and Quadratic equations) तथा अनिर्णीत समीकरण (Indeterminate equations) का विस्तृत वर्णन इसी पाद में किया गया है। घनमूल और वर्गमूल निकालने की विधियों का वर्णन भी आर्यभट्ट द्वारा किया गया है। इसमें वैराशिक (ratio of three) का भी उल्लेख मिलता है।

आर्यभट्ट के पश्चात भास्कर ने 'महाभास्करीय', 'आर्यभट्टीय भाष्य' और 'लघुभास्करीय' में आर्यभट्ट द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को और विकसित एवं विस्तृत किया।

ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' के 25 अध्यायों में से 2 अध्यायों में गणित से सम्बन्धित 20 क्रियाओं और व्यवहारों का वर्णन किया है तथा कहा कि उन्हें जानने वाला ही गणितज्ञ है। क्षेत्रफल और घनफल निकालने की विधि का वर्णन भी मिलता है। महावीराचार्य ने अपनी पुस्तक 'गणित सार संग्रह' में लघुत्तमसमापवर्तक (L.C.M.) निकालने की विधि का वर्णन किया है।

आर्यभट्ट द्वितीय ने कुटक (π) पर विस्तृत विवरण दिया और इसका मान 22/7 बताया।

भास्कराचार्य मध्ययुग के अन्तिम और अप्रतिम गणितज्ञ थे। इन्होंने अपनी पुस्तक 'लीलावती बीजगणितम्' और सिद्धान्त शिरोमणि' में गणित की विभिन्न शाखाओं यथा–अंकगणित, बीजगणित त्रिकोणमिति आदि को एक प्रकार से अन्तिम रूप दिया। इसके पश्चात् आज तक शायद ही इन शाखाओं में कोई मौलिक परिवर्तन हुए हों। वेदों में जो सिद्धान्त सूत्र रूप में थे उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में हुई है। इन्हीं के सूत्रों को हम आज प्रमाण रूप में लेते हैं। इन्होंने ही ब्रह्मगुप्त की क्रियाओं और व्यवहारों का श्रेणीबद्ध विस्तारण अपनी पुस्तक लीलावती में किया है इसी पुस्तक में संख्यापद्धति को आधाररूप में प्रतिपादित किया गया जो बीजगणित और अंकगणित की रीढ़ है। सिद्धान्त शिरोमणि में त्रिकोणमिति के सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

- **उत्तरकालः–**

भास्कराचार्य के बाद मौलिक कृतियों की टीकाएं ही इस काल की मुख्य देन हैं। केरल के नीलकण्ठ ने 1500 ई. बाद एक पुस्तक में ज्या (Sine) का मान निकाला।

इस काल में लिखे गए मुख्य ग्रन्थ 'सिद्धान्त तत्व', 'गणित कौमुदी', 'सम्राट सिद्धान्त' और 'रेखागणित' हैं।

- **वर्तमान कालः–**

वर्तमान समय में सुधाकर द्विवेदी, भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज, रामानुजम् आदि के नाम उल्लेखनीय हैं किन्तु इस अद्वितीय विद्या को पुनर्जीवित करने का श्रेय भारतीकृष्ण तीर्थ जी को जाता है (1911–1915)। इनका मत है कि 120 शब्दों के 16 वैदिक गणित सूत्रों द्वारा गणित के अत्यन्त कठिन प्रश्नों जिन्हें कि गणितीय दृष्टि से अग्रणी आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक विश्व ने बहुत अधिक समय, शक्ति तथा धन खर्च करने के बाद भी बहुत कठिनता से तथा बहुत ही श्रम साध्य विधि से जिनमें बहुत सारी कठिन उबाऊ तथा दुष्कर पैड़ियाँ रहती हैं, हल किया है, को सरलतापूर्वक तथा सहज ही कुछ सरल पैड़ियों में मात्र मौखिक विधि द्वारा हल किया जा सकता है।

आधुनिक गणितज्ञ यथा प्रो0 जी0पी0 हाल्स्टैड, प्रो0 गिन्सबर्ग, प्रो0 डी0 मॉर्गन, प्रो0 हटन आदि ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया तथा प्राचीन भारत द्वारा गणितीय ज्ञान की प्रगति में दिए गए योगदान की भूरि–भूरि प्रशंसा की है।

एण्ड्रयू निकोलस, केनेथ विलियम्स और जेरेमी पिकल्स ने 1960 में भारती कृष्ण तीर्थ जी के द्वारा दिए गए व्याख्यान को 1981 में 'इन्ट्रोडक्टरी लेक्चर ऑन वैदिक मैथमैटिक्स' पुस्तक के रूप में संकलित किया। वैदिक गणित के विषय में और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए एण्ड्रयू निकोलस 1981–87 के बीच भारत आया तथा इस विधा के विशेषज्ञों से विचार–विमर्श किया।

वैदिक गणित ममर्ज्ञ डॉ0 नरेन्द्र पुरी (1990) ने वैदिक गणित के ऐतिहासिक विकास के परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध 16 सूत्रों की सहायता से गणितीय संक्रियाओं को प्रभावी ढंग से स्पष्ट किया है। श्री गणेश बागड़िया एच बी0टी0 आई (1992) कानपुर ने वैदिक गणित के प्रचार और प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

कानकोर्डिया विश्वविद्यालय, कनाडा के डॉ0 टी0डी0 द्विवेदी ने वैदिक गणित के महत्व विषय में अपने उद्‌बोधनों और कार्यों द्वारा विदेशों में वैदिक गणित के प्रति बढ़ती अभिरूचि और प्रसार को रेखांकित किया है।

- **आधुनिक युग में वैदिक गणित की प्रासंगिकताः–**

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवेचन से स्पष्ट है कि छात्रों को वैदिक गौरव, भारतीय मनीषा

और वाङंग्मय से परिचित कराया जाना चाहिए। विज्ञान एवं गणित विषय जो कि सभी विज्ञान और कला में मूर्धन्य हैं, को सरल और सुगम वैदिक गणित के माध्यम से पढ़ने एवं पढ़ाए जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

सामान्यतया विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले गणित विषय से बालकों के मस्तिष्क का बायाँ भाग ही विकसित और क्रियाशील होता है। मस्तिष्क का दायाँ भाग जो तथ्यों को एकत्र करके उनका क्रमबद्ध विश्लेषण करता है, विकसित नहीं हो पाता है। मस्तिष्क के इसी भाग से तर्कसंगत निष्कर्ष प्राप्त होते हैं तथा अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है जिसे हम मस्तिष्क के समग्र विकास (Holistic development of Brain) के नाम से जानते हैं। अतः एक ऐसी विधि को अपनाना तर्कसंगत होगा जिसके द्वारा मस्तिष्क का दायाँ भाग भी क्रियाशील हो सके। इन सब पर मन्थन करने पर हमारे समक्ष वैदिक गणित उपस्थित हो जाता है जिसके द्वारा हमें आदर्श ढांचे की पहचान होती है। अनेक सम्भावनाओं में से उपयुक्त विधि का चयन होता है। विभिन्न सम्भावनाएं और चुनाव मस्तिष्क को जीवन्त बनाए रखते हैं जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क और विचारधारा की स्पष्टता तथा अन्तर्ज्ञान की क्षमता उत्पन्न होती है तथा मानव मास्तिष्क का सर्वांगीण विकास स्वतः ही होने लगता है। यह किसी भी प्रश्न को हल करने की न केवल एक साधारण पद्धति है अपितु विशिष्ट प्रश्नों को द्रुत गति से हल करने वाली एक विशिष्ट पद्धति भी है। प्रयोग के अधार पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि वैदिक गणित में अनेक विधियों के उपलब्ध होने के कारण छात्र अपनी योग्यतानुरूप विधि का चयन कर सकता है। अतः शिक्षाक्रम के विभिन्न स्तरों पर वैदिक गणित की विषय–वस्तु व उपागम को समाहित करना आज के युग की महती आवश्यकता है।

भूतपूर्व मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ0 मुरली मनोहर जोशी ने आई0आई0टी0 दिल्ली में दिए गए भाषण में वैदिक गणित की आवश्यकता और महत्व पर प्रकाश डाला। भारत के उच्च तकनीकी शिक्षा संस्थानों में भी वैदिक गणित को पाठयक्रम में समाहित किया गया है। गेस्केल (2000) ने इण्लैण्ड के महर्षि स्कूल में वैदिक गणित के महत्व को दृष्टि में रखते हुए पाठ्यक्रम में समाहित किया।

प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर भी इसके पाठ्यक्रम को सम्मिलित करने पर दाशमिक प्रणाली को समझना सरल हो जाएगा और इस प्रकार प्राप्त किया गया ज्ञान स्थायी होगा इस दाशमिक प्रणाली को सुस्पष्ट करते हुए कहा गया है कि–

एकं दश शतं चैव सहस्त्रायुतम लक्षकम्।।
प्रयुत कोटि संज्ञा चार्बुदमब्जं च खर्वकम्।
निखर्वम् च महापद्मं शंकुर्जलधिरेव च।।
अन्त्यं मध्यं परार्द्धम् च संज्ञा दशगुणोत्तराः।

अर्थात एकं (एक या 1), दशं (दस या 10), शतं (एक सौ या 102), सहस्त्रं (एक हजार

या 103), अयुतं (दस हजार या 104), लक्षकम् (एक लाख या 105), प्रयुतं (दस लाख या 106), कोटि (करोड़ या 107), अर्बुदं (10 करोड़ या 108), अबजं (एक अरब या 109), खर्वकम् (10 अरब या 1010), निखर्वम् (1 खरब या 1011), महापद्मं (10 खरब 1012), शंकु (एक नील 1013), जलधि (दस नील या 1014), अन्त्यं (पद्म या 1015), मध्यं (दस पद्म या 1016) तथा परार्द्धम् (एक शंख या 1017), आदि संख्या बोधक संज्ञाएं दस गुनी होती है।

अन्ततः गणित के क्षेत्र में वैदिक कालीन भारतीय योगदान आज विश्व के मानचित्र पर अपना स्थान बनाता जा रहा है यद्यपि इसके प्रयोग व प्रसार की गति अत्यन्त धीमी है। डेसमण्ड डाइंग का मंतव्य है कि 'यह विधा प्रत्येक मनुष्य को गणितज्ञ बना सकती है। अतः इसके प्रचार व प्रसार में तीव्रता लायी जाये जिससे संगणक के स्थान पर मानवीय संगणक का प्रयोग अधिक शीघ्रता व परिशुद्धता के साथ किया जा सके। वस्तुतः हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हमारे पाठ्यक्रम, पाठ्य–पुस्तकों और शिक्षा के विविध उपादानों द्वारा भारत के कर्णधारों को इसके गौरवशाली व उन्नत अतीत से परिचित कराया जाये तथा इसके द्वारा उनमें भारतीय मूल्यों को प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया जाये। इसके लिये आश्यक है कि शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में इसको अनिवार्य रुप से स्थान दिया जाये व शोध के स्तर पर भी इसका समावेश किया जाये।

प्रो0 डी0 मार्गन तथा अन्य गणितज्ञों ने यह स्वीकारा है कि आधुनिक पाश्चात्य गणित की उच्चतम उड़ान भी पश्चात्य विश्व को प्राचीन भारतीय वैदिक गणित के आरम्भ तक नहीं ले जा पायी है। अतः इस विधा को भारत की प्रगति के लिये हमें पुनर्जीवित करने का प्रयास करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

- अग्रवाल, वी0एस0 (1991): वैदिक गणितः वेदों से प्राप्त सोलह सरल गणितीय सूत्र, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा.लि., दिल्ली।
- कैलाश और शर्मा, के0 (1992): वैदिक गणितः समग्र दृष्टि (प्रथम भाग), अशोका प्रिन्टर्स मालरोड, कानपुर।
- पुरी, एन0 (1990): एन्शिएन्ट वैदिक मैथमेटिक्स मैथ्स विथ स्माइल्स, स्पीरिचुयल साइन्स सीरिज, रूड़की।
- विज्ञान और गणित विभाग, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् उ.प्र. इलाहावाद (1992): वैदिक गणित पाठ्यक्रम का विकास विषयक।